क्रांतिधर्मी साहित्य - युग साहित्य - इक्कीसवीं सदी का मार्गदर्शक साहित्य

क्रान्तिधर्मी साहित्य-युग साहित्य नाम से विख्यात यह पुस्तकमाला युगद्रष्टा-युगसृजेता प्रज्ञापुरुष पं.श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा १९८९-९० में महाप्रयाण के एक वर्ष पूर्व की अवधि में एक ही प्रवाह में लिखी गयी है। प्रायः २० छोटी-छोटी पुस्तिकाओं में प्रस्तुत इस साहित्य के विषय में स्वयं हमारे आराध्य प.पू. गुरुदेव पं.श्रीराम शर्मा आचार्य जी का कहना था-"हमारे ये विचार, क्रान्ति के बीज हैं। ये थोड़े भी दुनियाँ में फैल गए, तो अगले दिनों धमाका कर देंगे। सारे विश्व का नक्शा बदल देंगे।....मेरे अभी तक के सारे साहित्य का सार हैं।.... सारे जीवन का लेखा-जोखा हैं।.... जीवन और चिंतन को बदलने के सूत्र हैं इनमें।.... हमारे उत्तराधिकारियों के लिए वसीयत हैं।.... अभी तक का साहित्य पढ़ पाओ या न पढ़ पाओ, इसे जरूर पढ़ना। इन्हें समझे बिना भगवान के इस मिशन को न तो तुम समझ सकते हो, न ही किसी को समझा सकते हो।.... प्रत्येक कार्यकर्त्ता को नियमित रूप से इसे पढ़ना और जीवन में उतारना युग-निर्माण के लिए जरूरी है। तभी अगले चरण में वे प्रवेश कर सकेंगे।.... यह इस युग की गीता है। एक बार पढ़ने से न समझ आए तो सौ बार पढ़ना और सौ लोगों को पढ़ाना। उनसे भी कहना कि आगे वे १०० लोगों को पढ़ाएँ। हम लिखें तो असर न हो, ऐसा हो ही नहीं सकता। जैसे अर्जुन का मोह गीता से भंग हुआ था, वैसे ही तुम्हारा मोह इस युग-गीता से भंग होगा।.... मेरे जीवन भर का साहित्य इस शरीर के वजन से भी ज्यादा भारी है। यदि मेरे जीवन भर के साहित्य को तराजू के एक पलड़े पर रखें और क्रांतिधर्मी साहित्य को दूसरे पलड़े पर, तो इनका वजन ज्यादा होगा।.... महाकाल ने स्वयं मेरी उँगलियाँ पकड़कर ये साहित्य लिखवाया है।.... इन्हें लागत मूल्य पर छपवाकर प्रचारित-प्रसारित (शब्दशः-अक्षरशः) करने की सभी को छूट है, कोई कापीराइट नहीं है।....मेरे ज्ञान शरीर को मेरे क्रान्तिधर्मी साहित्य के रूप में जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास करें।".....

महिला जागृति अभियान

लेखक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

सार-संक्षेप

माता के रूप में, देवी के रूप में विधाता की संरचना है—मातृशक्ति, महिमाशक्ति। यह उसका परमपूज्य दैवी रूप है। देवत्व के प्रतीकों में सर्वप्रथम स्थान नारी का और दूसरा नर का है। भाव-संवेदना, धर्म-धारणा और सेवा-साधना के रूप में उसी की वरिष्ठता को चरितार्थ होते देखा जाता है।

महिला शक्ति ने पिछले दिनों अनेकानेक त्रास देखे हैं। सामंतवादी अंधकार युग से उपजे अनर्थ ने सब कुछ उलट-पलट दिया है। उसे अबला समझा गया और कामिनी, रमणी, भोग्या व दासी जैसी स्थिति में रहने को विवश होना पड़ा। जो भाव पूज्य रहना चाहिए था, वही कुदृष्टि के रूप में बदल गया, किंतु अब परिवर्तन का तूफानी प्रवाह इस आधी जनशक्ति को उबारने हेतु गति पकड़ चुका है। पश्चिम के नारी-मुक्ति आंदोलन (विमन लिब) से अलग यह महिला शक्ति के जागरण की प्रक्रिया दैवी चेतना द्वारा संचालित है, पर बुद्धि की आकांक्षा के अनुरूप ही चल रही है। महापरिवर्तन की वेला में जब सतयुग की वापसी की चर्चा हो रही है, तो गायत्री परिवार ही नहीं, सारे विश्व में इस आधी जनशक्ति के उठ खड़े होने एवं विश्वरंगमंच के हर दृश्य-पटल पर अपनी महती भूमिका निभाते देखा जा सकेगा। शिक्षा एवं स्वावलंबन रूपी विविध कार्यक्रम के माध्यम से महिला-जागरण की, उसके पौरोहित्य से लेकर युगनेतृत्व सँभालने तक की, जो संभावनाएँ व्यक्त की जा रही हैं, मिथ्या नहीं हैं। ▭

नारा का परमपूज्य दवा रूप

जीवसृष्टि की संरचना जिस आदिशक्ति महामाया द्वारा संपन्न होती है, उसे विधाता भी कहते हैं और माता भी। मातृशक्ति ने यदि प्राणियों पर अनुकंपा न बरसाई होती, तो उसका अस्तित्व ही प्रकाश में न आता। भ्रूण की आरंभिक स्थिति एक सूक्ष्मबिंदु मात्र होती है। माता की चेतना और काया उसमें प्रवेश करके परिपक्व बनने की स्थिति तक पहुँचाती है। प्रसव-वेदना सहकर वही उसके बंधन खोलती और विश्व-उद्यान में प्रवेश कर सकने की स्थिति उत्पन्न करती है। असमर्थ-अविकसित स्थिति में माता ही एक अवलंब होती है, जो स्तनपान कराती और पग-पग पर उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। यदि नारी के रूप में माता समय-समय पर चित्र-विचित्र प्रकार के अनुग्रह न बरसाती तो मनुष्य ही नहीं, किसी भी जीवधारी की सत्ता इस विश्व-ब्रह्मांड में कहीं भी दृष्टिगोचर न होती, इसलिए उसी का जीवनदायिनी ब्रह्मचेतना के रूप में अभिनंदन होता है। वेदमाता, देवमाता व विश्वमाता के रूप में जिस त्रिपदा की पूजा-अर्चा की जाती है, प्रत्यक्षतः उसे नारी ही कहा जा सकता है।

मनुष्य के अतिरिक्त प्रतिभावान प्राणियों में देव-दानवों की गणना होती है। कथा है कि वे दोनों ही दिति और अदिति से उत्पन्न हुए। सृजनशक्ति के रूप में इस संसार में जो कुछ भी सशक्त, संपन्न, विज्ञ और सुंदर है, उसकी उत्पत्ति में नारीतत्त्व की ही अहं भूमिका है, इसलिए उसकी विशिष्टता को अनेकानेक रूपों में शत-शत नमन किया जाता है। सरस्वती, लक्ष्मी और काली के रूप में विज्ञान का तथा गायत्री-सावित्री के रूप में ज्ञानचेतना के अनेकानेक पक्षों का विवेचन होता है।

देवत्व के प्रतीकों में प्रथम स्थान नारी का और दूसरा नर का है। लक्ष्मी–नारायण, उमा–महेश, शची–पुरंदर, सीता–राम, राधे–श्याम जैसे देव–युग्मों में प्रथम नारी का और पश्चात नर का उल्लेख होता है। माता का कलेवर और संस्कार बालक बनकर इस संसार में प्रवेश पाता और प्रगति की दिशा में कदम बढ़ाता है। वह मानुषी दीख पड़ते हुए भी वस्तुतः देवी है। उसके नाम के साथ प्रायः देवी शब्द जुड़ा भी रहता है। श्रेष्ठ एवं वरिष्ठ उसी को मानना चाहिए। भाव-संवेदना, धर्म–धारणा और सेवा–साधना के रूप में उसी की वरिष्ठता को चरितार्थ होते देखा जाता है।

पति से लेकर भाई और पुत्र तक को, उनकी रुचि एवं माँग के अनुरूप वही विभिन्न रूपों से निहाल करती है। व्यवहार में उसे तुष्टि, तृप्ति और शांति के रूप में अनुभव किया जाता है। आत्मिक क्षेत्र में वही भक्ति, शक्ति और समृद्धि है। उसका कण–कण सरसता से ओत–प्रोत है। इन्हीं रूपों में उसका वास्तविक परिचय प्राप्त किया जा सकता है। नर उसे पाकर धन्य बना है और अनेकानेक क्षमताओं का परिचय देने में समर्थ हुआ है। इस अहैतुकी अनुकंपा के लिए उसके रोम–रोम में कृतज्ञता, श्रद्धा और आराधना का भाव उमड़ते रहना चाहिए। इस कामधेनु का जो जितना अनुग्रह प्राप्त कर सकने में सफल हुआ है, उसने उसी अनुपात में प्रतिभा, संपदा, समर्थता और प्रगतिशीलता जैसे वरदानों से अपने को लाभान्वित किया है। तत्त्ववेत्ता अनादिकाल से नारी का ऐसा ही मूल्यांकन करते रहे हैं और जन–जन को उसकी अभ्यर्थना के लिए प्रेरित करते रहे हैं। शक्तिपूजा का समस्त विधि–विधान इसी मंतव्य को हृदयंगम कराता है।

विकासक्षेत्र में प्रवेश करते हुए हर किसी को इसी के विभिन्न रूपों की साधना करनी पड़ी है। श्रद्धा, प्रज्ञा, निष्ठा, क्षमता, दक्षता, कला, कुशलता और दूरदर्शिता के रूप में उसी महाशक्ति के सूक्ष्म स्वरूप का वरण किया जाता है। साधना से सिद्धि की परंपरा इसी आधार पर प्रकट होती रही है। संसार में सभ्यता और समझदारी

वाले दिनों में नारी को उसकी गौरव-गरिमा के अनुरूप जन-जन का भाव-भरा सम्मान भी मिलता रहा है—तदनुरूप सर्वत्र सतयुगी सुख-शांति का वातावरण भी दृष्टिगोचर होता रहा है।

नारी-जीवन के दुर्दिन और दुर्दशा

कभी-कभी भटकाव के दुर्दिन भी आते और अपनी प्रकृति के अनुरूप अनेकानेक त्रास भी देते हैं। मध्यकालीन सामंतवादी अंधकार युग में ऐसा कुछ अनर्थ उपजा कि सब कुछ उलट-पलट हो गया—सिर नीचे और पैर ऊपर जैसे विचित्र दृश्य देखने को विवश होना पड़ा, नारी की मूलसत्ता और आत्मा को एक प्रकार से भुला दिया गया, उसे अबला समझा गया और कामिनी, रमणी, भोग्या व क्रीतदासी जैसी घिनौनी स्थिति में रहने योग्य ठहराया गया। तिरस्कृत, शोषित, संत्रस्त और पददलित स्थिति में रखे जाने पर हर विभूति को दुर्दशाग्रस्त होना पड़ता है। वही नारी के संदर्भ में भी हुआ। पूज्यभाव कुदृष्टि के रूप में बदला और उसे वासना की आग में झोंककर कल्पवृक्ष को काला कोयला बनाकर रख दिया गया।

मध्यकाल में नारी पर जो बीती, वह अत्याचारों की एक करुण कथा है—उसे मनुष्य और पशु की मध्यवर्ती एक इकाई माना गया, मानवोचित अधिकारों से वंचित करके उसे पिंजड़े में बंद पक्षी की तरह घर की चहारदीवारी में कैद कर दिया गया, कन्या का जन्म दुर्भाग्य का सूचक और पुत्र का जन्म रत्नवर्षा की तरह सौभाग्य का सूचक माना जाने लगा, लड़की-लड़कों के बीच इतना भेदभाव और पक्षपात चल पड़ा कि दोनों के बीच शिक्षा, दुलार एवं सुविधा-साधनों की असाधारण न्यूनाधिकता देखी जाने लगी। अभिभावक तक जब ऐसी अनीति बरतें तो फिर बाहर ही उसे कौन श्रेय और सम्मान प्रदान करे—ससुराल पहुँचते-पहुँचते उसे रसोईदारिन, चौकीदारिन, धोबिन, सफाई करने वाली और कामुकता-तृप्ति की साधन-सामग्री के रूप में प्रयुक्त किया जाता

रहा, दूसरे दरजे की नागरिक ठहराया गया, अनीति के विरुद्ध मुँह खोलने तक पर प्रतिबंध लग गया।

दोनों के लिए अलग-अलग आचार-संहिताएँ चलीं—स्त्री के लिए पतिव्रत अनिवार्य और पुरुष के लिए पत्नीव्रत का कोई अनुबंध नहीं, स्त्री के लिए घूँघट आवश्यक, पर पुरुष के लिए खुले मुँह घूमने की छूट, विधवा पर अनेक प्रतिबंध और विधुर के लिए कई विवाह कर लेने की स्वतंत्रता, विवाह में दहेज की वसूली कम मिलने पर लड़की का उत्पीड़न, जल्दी बच्चे न होने पर दूसरे विवाह की तैयारी, आर्थिक दृष्टि से सर्वथा अपंग तथा नागरिक अधिकारों से वंचित करने जैसी अनीतियों से नारी को पग-पग पर सताया जाने लगा, फलतः वह क्रमशः अपनी सभी विशेषताएँ गँवाती ही गई। जिनमें रूप-सौंदर्य है, उन्हें पसंद किया जाता है और जो औसत स्तर की साधारण हैं, उन्हें कुरूप ठहराकर विवाह के लिए वर ढूँढ़ना तक मुश्किल पड़ जाता है। और भी ऐसे कितने ही प्रसंग हैं, जिन पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि एक वर्ग ने दूसरे वर्ग पर कितना प्रतिबंध और अनाचार लादा है। नारी को प्रगति के लिए जिस प्रगतिशील वातावरण की आवश्यकता है, उसके सभी द्वार बंद हैं।

भारत जैसे पिछड़े देशों में नारी की अपनी तरह की समस्याएँ हैं और तथाकथित प्रगतिशील कहे जाने वाले संपन्न देशों में दूसरे प्रकार की। संसार की आधी जनसंख्या को ऐसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जिन्हें यदि आड़े न आने दिया गया होता तो नारी सदा की भाँति अभी भी नर की असाधारण सहायिका रही होती, पर उस दुर्भाग्य को क्या कहा जाए, जिसने आधी जनशक्ति को पक्षाघात-पीड़ित की तरह अपंग और असाध्य जैसी स्थिति में मुश्कें कसकर सदा कराहते और कलपते रहने के लिए बाध्य कर दिया है। बाँधने और दबोचने की नीति ने अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करने से हाथ रोका नहीं है। बाँधने वाले को भी साथ-साथ अपने कुकृत्यों का दंड भुगतने के लिए बाध्य कर दिया है—साथी को

असमर्थ बनाकर रखने वालों को उसका भार भी वहन करना पड़ेगा। ऐसी कुछ सहृदयता कहाँ बन पड़ेगी, जिसमें एक और एक अंक समान पंक्ति में रखे जाने पर ११ बन जाते हैं। एक को ऊपर व एक को नीचे रखकर घटा देने पर तो शून्य ही शेष बचता है। पिछड़ेपन से ग्रस्त नर और नारी दोनों ही इन दिनों शून्य जैसी दयनीय स्थिति में रहने के लिए बाध्य हो रहे हैं।

परिवर्तन का तूफानी प्रवाह

स्रष्टा को औचित्य और संतुलन ही पसंद है। वह उद्दंडता को लंबे समय तक सहन नहीं करता। अवांछनीयता लंबे समय तक फलती-फूलती स्थिति में नहीं रह सकती। संव्याप्त संतुलन-व्यवस्था अपने ढंग से, अपने समय पर, अपने सुधारक्रम का परिचय देती है। उसने सदा उलटे को उलटकर सीधा करने एवं सुव्यवस्था को जीवंत रखने के लिए प्रबल प्रयत्न किया है। अनीति की असुरता ने समय-समय पर सिर उठाया है, पर उसका आतंक सदा-सर्वदा स्थिर नहीं रह सकता है—कुकुरमुत्ते लंबी आयुष्य लेकर नहीं जन्मते—अनाड़ी-असंतुलन को कुछ ही समय में औचित्य के सामने हार माननी पड़ी है।

इन दिनों कुछ ऐसे ही परिवर्तन हो रहे हैं। सामंतशाही धराशायी हो गई। राजमुकुट धूमिल-धूसरित हुए दीख पड़ते हैं। जमींदारी और साहूकारों के प्रचलन समाप्त हो गए। अब दास-दासियों को पकड़े और बेचे-खरीदे जाने का प्रचलन कहाँ है? सैकड़ों रखैल कैद रखने वाले 'हरम' अब मुश्किल से कहीं ढूँढ़े मिलते हैं। सती-प्रथा अब कहाँ है? छूत-अछूत के बीच जैसा भेदभाव कुछ दशाब्दी पहले चला था, अब उसमें कितना अधिक परिवर्तन हो गया है। आश्चर्यजनक परिवर्तनों की शृंखला में अब एक-एक करके अनेक कड़ियाँ जुड़ती चली जा रही हैं। राजक्रांतियों और सामाजिक क्रांतियों का सिलसिला अभी भी रुका नहीं है। इसमें माननीय पुरुषार्थ का भी अपना महत्त्व जुड़ा रहा है, पर कुछ ही

दिनों में इतने क्षेत्र में इतनी बड़ी उलट-पलट हो जाने के पीछे स्रष्टा के अनुशासन को भी कम महत्त्व नहीं दिया जा सकता। तूफानी अंधड़ों में रेत के टीले उड़कर कहीं-से-कहीं जा पहुँचते हैं, चक्रवातों के फेर में पड़े पत्ते और तिनके आकाश चूमते देखे जाते हैं, यह समर्थ के साथ असमर्थ के जुड़ जाने की प्रत्यक्ष परिणति है।

इक्कीसवीं सदी महापरिवर्तनों की वेला है। इसके पूर्व के बारह वर्ष युगसंधि के नाम से निरूपित किए गए हैं। इस अवधि में सूक्ष्मजगत् की विधि-व्यवस्था बहुत बड़े परिवर्तनों की रूपरेखा बना गई है और महत्त्वाकांक्षी योजनाएँ विनिर्मित कर गई है। उसका लक्ष्य सतयुग की वापसी का रहा है। ऋषि-परंपराएँ, देव-परंपराएँ और महामानवों द्वारा अपनाए जाते रहे दृष्टिकोण, प्रचलन और निर्धारण अगले ही दिनों क्रियान्वित होने जा रहे हैं। लंबे निशाकाल से सर्वत्र छाया हुआ अंधकार अब अपने समापन के अति निकट है। उषाकाल का उद्‌भव हो रहा है और अरुणोदय का परिचय मिल रहा है। इस प्रभातपर्व में बहुत कुछ बदलना, सुधरना और नए सिरे से नया निर्माण होना है। इसी संदर्भ में एक बड़ी योजना यह संपन्न होने जा रही है कि नारी का खोया वर्चस्व उसे नए सिरे से प्राप्त होकर रहेगा। वह स्वयं उठेगी, अवांछनीयता के बंधनों से मुक्त होगी और ऐसा कुछ कर गुजरने में समर्थ होगी, जिसमें उसके अपने समुदाय, जनसमाज और समस्त संसार को न्याय मिलने की संभावना बने और उज्ज्वल भविष्य की गतिविधियों को समुचित प्रोत्साहन मिले। इक्कीसवीं सदी नारी शताब्दी के नाम से प्रख्यात होने जा रही है। उस वर्ग के उभरने से उसे अपने महान कर्त्तव्य का परिचय देने का अवसर मिलेगा।

भूतकाल के नारीरत्नों का स्मरण करके यह आशा बलवती होती है कि समय की पुनरावृत्ति कितनी सुखद होगी? कुंती ने पाँच देव-पुत्र जन्मे थे। मदालसा ने योगी पुत्रों को व गंगा ने वसुओं को जन्म दिया था। सीता की गोदी में लव-कुश खेले थे और शकुंतला ने आश्रम में रहकर चक्रवर्ती भरत का इच्छानुरूप निर्माण

किया था। अनुसूया के आँगन में ब्रह्मा, विष्णु, महेश बालक बनकर खेले थे। उन्हीं ने मंदाकिनी को स्वर्ग से चित्रकूट में उतारा था। अरुंधती आदि सप्तऋषियों की धर्मपत्नियाँ उनकी तपश्चर्या को अधिकाधिक सफल-समर्थ बनाने में वरिष्ठ साथी की भूमिका निभाती रही थीं। शतरूपा ने मनु की प्रतिभा को विकसित करने में असाधारण योगदान दिया था। इला अपने पिता के आयोजनों में पुरोहित का पद सँभालती थी। वैदिक ऋचाओं के प्रकटीकरण में ऋषियों की तरह ही ऋषिकाओं ने अपनी विद्वत्ता का परिचय दिया था। दशरथ सपत्नीक देवताओं की सहायता के लिए लड़ने गए थे।

मध्यकाल में रानी लक्ष्मीबाई ने महिलाओं की विशाल सेना खड़ी करके एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया था। स्वतंत्रता संग्राम में महिला वर्ग ने जितना समर्थ योगदान दिया था, उसे देखकर भारत ही नहीं, संसार भर के मूर्धन्यों को चकित रह जाना पड़ा था। उनमें से अनेक प्रतिभाएँ ऐसी थीं, जो किसी भी दिग्गज समझे जाने वाले पुरुष की तुलना में कम नहीं थीं। भारत का इतिहास ऐसी महिलाओं के व्यक्तित्व और कर्तृत्व से भरा पड़ा है, जिस पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि उस काल का महिला-समुदाय कितना समर्थ और यशस्वी रहा होगा!

नई शताब्दी-नारी शताब्दी

अंधकार युग से उभरकर अनेक सत्प्रवृत्तियों की तरह नारी भी अब नए सिरे से अपने वर्चस्व का परिचय देने के लिए ऊपर आ रही है। इसे कल्पना या संभावना नहीं, वरन सुनिश्चित भवितव्यता ही समझना चाहिए।

विदेशों में यह क्रम पहले से ही चल पड़ा है। समुन्नत देशों में नारी का प्रवेश उन सभी क्षेत्रों में है, जिनमें कि पुरुष अपने पुरुषार्थ का परिचय देते रहे हैं। अमेरिका, जापान, जर्मनी, रूस आदि की महिलाएँ राजनीति से लेकर वैज्ञानिक और आर्थिक क्षेत्र में क्रांतिकारी कार्य कर रही हैं। इनकी समाजसेवा भी ऐसी

है, जिसके लिए मुक्त कंठ से प्रशंसा की जा सकती है। मांटेसरी की शिक्षा क्रांति, फ्लोरेंस नाइटिंगेल का रेडक्रॉस आंदोलन, मैडम क्यूरी के वैज्ञानिक अनुसंधान, मदर टेरेसा की दरिद्रों के प्रति करुणा व मेरी स्टोप का परिवार-नियोजन कार्यक्रम ऐसी उपलब्धियाँ हैं, जिनका चिरकाल तक भावभरा स्मरण होता रहेगा। राजनीति के क्षेत्र में इंदिरा गांधी, गोल्डामायर, माग्रेरेट थेचर, भंडार नायके, कोरा एक्वीनो आदि का नाम हर किसी की जवान पर रहा है। बेनजीर भुट्टो ने पाकिस्तान में हेरोइन तस्करों के विरुद्ध अपने ढंग की जंग छेड़ी। जापान में तो कमाल ही हुआ है। वहाँ की एक महिला टाकोका डोई ने जनमानस पर अपनी ऐसी छाप छोड़ी कि पहले टोकियो असेंबली के चुनाव में तथा उसके बाद पूरे जापान के चुनावों में महिला प्रधान प्रजातांत्रिक पार्टी को बहुमत दिलाकर ही छोड़ा। संसार भर में महिलाएँ अपने वर्चस्व के ऐसे प्रमाण-परिचय दे रही हैं, जिन्हें देखते हुए उन पर किसी भी प्रकार पिछड़ेपन का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

यह सब गत शताब्दी में संभव हुआ है। अब, इस उभार में और अधिक उफान आने की पूरी-पूरी संभावना है। इसके लक्षण भी पग-पग पर प्रमाणों के साथ सामने आ रहे हैं। उदाहरण के लिए भारत के एक छोटे प्रांत केरल को लिया जा सकता है। वहाँ की लड़कियों ने शिक्षा के क्षेत्र में अग्रगामी होकर भारत के अन्य सभी क्षेत्रों को पीछे छोड़ दिया है। स्कूल में प्रवेश पाने के बाद ग्रेजुएट होने से पूर्व कोई पढ़ाई बंद नहीं करतीं, वरन आगे भी अनेकानेक क्षेत्रों में योग्यता बढ़ाने का क्रम यथावत् बनाए रखती हैं। महिलाओ ने आग्रहपूर्वक सरकार से यह कानून पास कराया है कि २६-२७ वर्ष से कम की महिला और २९ वर्ष से कम आयु का कोई पुरुष शादी न कर सके। इन प्रयासों के तीन सत्परिणाम सामने आए हैं— एक तो यह कि प्रगति-पथ में पग-पग पर रोड़ा अटकाने वाली जनसंख्या-वृद्धि संतोषजनक ढंग से रुक गई है। दूसरे, वहाँ के शिक्षितों ने देश-विदेश में आजीविका पाने में आश्चर्यजनक सफलता

पाई है। तीसरे, प्रदेश की समृद्धि में संतोषजनक अभिवृद्धि हुई है। फलतः सरकार ने जनता को खाद्य-पदार्थों की कीमतों में असाधारण छूट दी है। अपराधों की संख्या नाममात्र को रह गई है। इन सभी बातों में नारी समाज के निजी उत्साह ने प्रमुख भूमिका निभाई है। यों पुरुषों ने भी उनके मार्ग में कोई बड़ा अवरोध खड़ा नहीं किया है। केरल की एक महिला तो अमेरिकी नौसेना विभाग में बड़े ऊँचे पद पर रही है।

यह गत शताब्दी में हुई नारी-प्रगति की हलकी-सी झलक मात्र है। यदि विश्व-भ्रमण पर निकला जाए तो प्रतीत होगा कि अनेक देशों या क्षेत्रों में इस संदर्भ में नया उत्साह उभरा है और नारी-प्रगति को देखते हुए यह निष्कर्ष निकलता है कि यह हवा आगे भी रुकने वाली नहीं है और वह लक्ष्य पूरा होकर रहेगा, जिसमें नर और नारी एक समान का उद्घोष किया गया है।

भारत अग्रणी था-अग्रणी रहेगा

भारत को इस दिशा में अभी बहुत कुछ करना है। जिस देश की संघमित्रा और आम्रपाली अपने सुविधा-साधनों को लात मारकर विश्व के कल्याण के लिए निकल पड़ी थीं और संसार भर में बौद्धमठों की स्थापना एवं संगठन में असाधारण रूप से सफल हुई थीं, उसी देश में इन दिनों नारी का पिछड़ापन अभी भी बुरी तरह छाया हुआ है। देहाती क्षेत्रों में तो उसकी शिक्षा और सामाजिक स्थिति दयनीय स्तर की देखी जा सकती है, फिर भी समय का परिवर्तन इस पिछड़े क्षेत्र में भी चमत्कार प्रस्तुत करने के लिए कटिबद्ध हो रहा है और प्रगतिशीलता की नई उमंगें उभर रही हैं।

भारत में पंचायती राज स्थापित होने की भूमिका बनाई गई है, साथ ही चुने हुए पंचों में नारी को तीस प्रतिशत अनुपात से चुने जाने की घोषणा हुई है। आशा की गई है कि वह अनुपात प्रांतीय और राष्ट्रीय स्तर पर भी ऊँची मान्यता प्राप्त करेगा। जनजातियों के

आरक्षण की तरह अन्य महत्त्वपूर्ण भागों और पदों पर भी उनका समुचित ध्यान रखा जाएगा। समय की इस माँग को किसी के द्वारा भी झुठलाया नहीं जा सकता।

बात भले ही शासकीय क्षेत्रों में प्रवेश पाने से आरंभ हो, पर यह प्रगतिक्रम उतने छोटे क्षेत्र तक ही सीमित होकर नहीं रह सकता। यह प्रतीक मात्र है कि उनकी उपयोगिता समझी जाने लगी और समुचित सम्मान मिलने की प्रथा चल पड़ी है। सुधारने-सँभालने के लिए अभी अगणित क्षेत्र खाली पड़े हैं। उन्हें सुव्यवस्थित करने की जिम्मेदारी नारी के कंधों पर अनायास ही बढ़ती चली आ रही है। सहकार का महत्त्व समझ में आने लगा है और यह अनुभव किया जाने लगा है कि टाँग पकड़कर पीछे घसीटने का भौंड़ा खेल हर किसी के लिए हर दृष्टि से हानिकारक और कष्टदायक ही हो सकता है।

अगले दिनों नारी स्वाभाविक रूप से अधिक समर्थ, कुशल और सुसंस्कृत बनने जा रही है। यह उसके नवजीवन का स्वर्णिम काल है। वर्षा ऋतु आए और हरियाली का महत्त्व दीख न पड़े, यह हो ही नहीं सकता। वसंत का अवतरण हो और पेड़-पादपों पर रंग-बिरंगे फूल न खिलें, यह हो ही नहीं सकता, प्रभात उगे और अंधकार एवं निस्तब्धता का माहौल बना रहे, यह अनहोनी होती दीख पड़े, इसकी आशंका किसके मन में रहेगी? नारी युग की अधिष्ठात्री, धरती की देवी अपनी गरिमा सिकोड़े-समेटे और दबाए-दबोचे बैठी रहे, यह विपन्नता क्यों, कैसे और कब तक बनी रह सकती है? समर्थता के साथ-साथ समझदारी भी बढ़ती है और वह अदृश्य के मार्गदर्शन में अभ्युदय की दिशा में चल पड़े, तो उसके द्वारा उत्पन्न होने वाले चमत्कारों से वंचित ही बने रहना किस कारण रुका रह सकेगा?

नारी के अनुदान कभी भी हलके स्तर के नहीं रहे। उसने धरित्री के, ऊर्जा के, वर्षा के व प्राणवायु के सदृश अपनी

विभूति-वर्षा से संसार के कण-कण को सरस, सुंदर एवं समुन्नत बनाया है। करुणा, दया, सेवा, उसका समर्पण और उसकी अनुकंपा ही है, जो इस संसार को सुरम्य और सुसंस्कृत रखे रह पा रही है। अगले दिनों तो उसे अपनी महत्ता का परिचय और भी बढ़-चढ़कर देना है। प्रतिकूलता को अनुकूलता में, पतन को उत्थान में और समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना अगले दिनों उसी का अग्रगम्य अनुदान होगा।

यह सब कुछ अनायास ही नहीं हो जाएगा। नियति चाहे कुछ भी क्यों न हो, पर उनके लिए पुरुषार्थ तो करना ही पड़ता है। बुद्ध और गांधी जैसी देवात्माएँ विश्व-कल्याण के लिए अवतरित हुई थीं, पर यह लक्ष्य अनायास ही पूरा नहीं हो गया, उन्हें स्वयं तथा उनके सहयोगियों को निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचने के लिए त्याग और साहस भरे प्रयत्न करने पड़े थे। हनुमान और अर्जुन महाप्रतापी बनने के लिए जन्मे थे। उन्हें दैवी अनुग्रह भी विपुल परिमाणों में प्राप्त था, पर यह भुलाया नहीं जा सकता कि उन्हें अपने साथियों सहित, असाधारण पुरुषार्थ का परिचय देना पड़ा था—अनायास तो सामने थाली में रखे भोजन को अपने आप मुँह में प्रवेश करते और पेट में पड़कर क्षुधा-निवारण करते नहीं देखा गया—फिर युग-अवतरण के लिए संभावित नारी-पुनरुत्थान भी अपना उचित मूल्य माँगे तो उसमें आश्चर्य ही क्या है?

प्रत्यक्षतः तो शिक्षा-स्वावलंबन, परिवार-पोषण व कला-कौशल जैसे क्षेत्रों में नारी का सहयोग करने भर से काम चल रहा है। इन कामों में विचारवानों से लेकर सरकार तक का सहयोग मिल रहा है। वे नौकरियों में भी प्रवेश कर रहीं हैं। इन लक्ष्यों को प्रगति का नाम भी मिल रहा है। इतने पर भी एक भारी कठिनाई अभी भी आ रही है, जो मान्यताओं और प्रथाओं के रूप में अदृश्य होते हुए भी इतना अनर्थ कर रही है कि उसकी तुलना में दृश्यमान विकास कार्यों में होने वाले लाभों को नगण्य ही कहा जा सकता है।

ये बंधन अब टूटने ही चाहिए

लोकमानस में नारी के प्रति इतनी भ्रांतियाँ, इतनी मूढ़ मान्यताएँ जड़ पकड़ गई हैं कि उन्हें ऐसे कुहासे का प्रकोप कह सकते हैं, जिसमें हाथ-को-हाथ नहीं सूझता। दुर्बुद्धि, समझदारी जैसी लगती है। परिवर्तन इसी क्षेत्र में लाए जाने की आवश्यकता है—मान्यताओं के अनुरूप चिंतन-प्रवाह चल पड़ता है, तदनुरूप क्रिया-कलाप और प्रचलन-व्यवहार का क्रम स्वतः बन पड़ता है। जिन दिनों नारी की वरीयता शिरोधार्य की जाती थी और उसे मानुषी-कलेवर में देवी की मान्तया दी जाती थी, तब वह अपनी क्षमताओं को उभारने और समूची मानव जाति का बहुविध हित-साधन करने में समर्थ रहती थी, परिवारों को नररत्नों की खदान बना देने का श्रेय उसी के जिम्मे आता था, पर जब उसे उस उच्च पद से हटाकर मात्र पालतू पशु के समतुल्य समझा जाने लगा, तो स्वाभाविक ही था कि वह अशक्त, असुरक्षित और पराधीनता के गर्त में अधिकाधिक गहराई तक गिरती चली गई।

इन दिनों नारी के प्रति जो दृष्टिकोण है, उसमें अभिभावक उसे पराये घर का कूड़ा मानकर उपेक्षा करते और लड़कों की तुलना में कहीं अधिक निचले दरजे का पक्षपात बरतते हैं। पति की दृष्टि में वह कामुकता की आग को बुझाने का एक खरीदा गया माध्यम है। उसे कामिनी, रमणी और भोग्या के रूप में ही निरखा, परखा और संतान का असह्य भार वहन करने के लिए बाध्य किया जाता है। ससुराल के समूचे परिवार की दृष्टि में वह मात्र ऐसी दासी है, जिसे दिन-रात काम में जुटे रहने और बदले में किसी अधिकार या सम्मान पाने के लिए अनधिकृत मान लिया जाता है। स्पष्ट है, इन बाध्य परिस्थितियों में रहकर कोई भी मौलिक प्रतिभा को गँवाता ही चला जा सकता है। यही इन दिनों उसकी नियति बन गई है। हेय मानसिकता ने ही उसकी वरिष्ठता का अपहरण किया और फिर से न करने के लिए माँग करने तक में असह्य-असमर्थ

बना दिया है। ऐसी दशा में उसकी उपयोगिता और प्रतिभा का ह्रास होते जाना स्वाभाविक ही है। आधी जनसंख्या को ऐसी दयनीय स्थिति में पटक देने पर पुरुष भी मात्र घाटा ही सह सकता है। समस्त संसार को उनके गरिमाजन्य अनेकानेक लाभों से वंचित रहना पड़ रहा है, विशेषत: भारत जैसे पिछड़े देश के लोगों के लिए तो यह घाटा निरंतर उठाते रहना बहुत ही भारी पड़ता है।

न्याय और औचित्य को उपलब्ध करने के लिए माँग ही नहीं, संघर्ष करने वाले इस युग में नारी की यथास्थिति बनी रहे, यह हो नहीं सकता। समय ने अनेक प्रसंगों में अनेक स्तर के परिवर्तन करने के लिए बाध्य कर दिया है। वह प्रवाह नारी को यथास्थिति में यथावत् पड़े नहीं रहने दे सकता है। इस परिवर्तन और उत्थान की एक छोटी झलक-झाँकी नारी के अधिकारों को कानूनी स्थिति प्रदान करने से आरंभ हुई है और उसने सामाजिक क्षेत्र में उचित न्याय मिलने की संभावना का संकेत दिया है। पंचायत चुनाव में उनके लिए ३० प्रतिशत स्थान सुरक्षित किए गए हैं। यह स्तर प्रांतीय केंद्रीय शासन सभाओं में भी प्राप्त होगा। इस आधार पर उमड़े हुए उत्साह ने नर और नारी, दोनों को प्रभावित किया है। नारी सोचती है, उसे हर दृष्टि से शासित ही बने रहने की विवशता को क्यों वहन करना चाहिए? जब शासन में भागीदार बनने के लिए उसे अवसर मिला है, उसे वह गँवाए क्यों? और भविष्य में अपने वर्ग को उच्चाधिकार दिलाने का, स्वागत करने का मानस क्यों न बनाए? परिवार के पुरुष भी सोचते हैं कि हमारा कोई सदस्य यदि शासन में भागीदार बनता है, तो उस आधार पर पूरे परिवार का सम्मान और अधिकार बढ़ेगा ही। अस्तु, जहाँ सम्मान-लाभ का प्रयोग आता है, वहाँ सहज सहमति हो जाती है। वर्तमान सुधारों का सर्वत्र स्वागत ही किया गया है और प्रयास चल पड़ा है कि नारियों को अधिक सुयोग्य बनाया जाए ताकि वे जनसाधारण की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण मानी जाएँ और उन्हें मतदान में भी सफलता मिले।

समय की नब्ज पहचानी जाए

वस्तुतः महाकाल का यह प्रथम आश्वासन है, जिसके पीछे पिछड़ों को ऊँचा उठाकर समता का धरातल बनाने के लिए वचनबद्ध रहने का दैवी शक्तियों ने आश्वासन दिलाया है। लोकमानस भी समय की प्रचंड धारा के विपरीत बने रहने का देर तक दुराग्रह नहीं करता रह सकता। तूफान मजबूत पेड़ों को भी उखाड़ फेंकता है। घटाटोप वर्षा में छप्परों से लेकर झोंपड़ों तक को बहते देखा जाता है। पानी का दबाव बड़े-बड़े बाँधों में भी दरार डालने और उन्हें बहा ले जाने का दृश्य प्रस्तुत करता है। यह महाकाल की हुंकार ही है, जिसने नारी को पिछड़े क्षेत्र से हाथ पकड़कर आगे बढ़ने के लिए धकेला और घसीटा है। अब यह भी निश्चित है कि नारी-शिक्षा का द्रुत गति से विस्तार होगा। शिक्षा और व्यवस्था में पुरुष का ही एकाधिकार नहीं रहेगा। नारी-शिक्षा की परिवार-परिकरों से लेकर शासकीय शिक्षा-विभाग तक में समुचित व्यवस्था बनानी होगी। नारी-शिक्षा मात्र नौकरी दिलाने में काम आने भर का जादू, फुलझड़ी बनकर समाप्त नहीं हो जाएगी, वरन उसके साथ-साथ समानता और एकता को हर क्षेत्र में समान अवसर पाने, दिलाने की विधि-व्यवस्था भी जुड़ी रहेगी। इस कार्य को अध्यापक-अध्यापिकाएँ करें, नहीं तो हर दिशा में उमड़ती हुई प्रगतिशीलता यह कराकर रहेगी कि नारी अपना महत्त्व, मूल्य, अधिकार और भविष्य समझे, अनीतिमूलक बंधनों को तोड़े और उस स्थिति में रहे, जिससे कि स्वतंत्र वातावरण में साँस लेने का अवसर मिले। कहना न होगा कि यही लक्ष्य युगचेतना ने भी अपनाया है तथा नर और नारी एक समान का उद्घोष निखिल आकाश में गुंजायमान किया है। असहाय रहने और अनुचित दबाव के नीचे विवश रहने की परिस्थितियाँ समाप्त समझनी चाहिए। वे अब बदलकर ही रहने वाली हैं—कन्या-जन्म पर न किसी को

विलाप करते देखा जाएगा और न पुत्र-जन्म पर कहीं कोई बधाई बजाएगा। जो कुछ होगा, वह दोनों के लिए समान होगा। अगर अपने घर की लड़की पराये घर का कूड़ा है तो दूसरें घरों का कूड़ा अपने घर में भी तो बहू के रूप में गृहलक्ष्मी की भूमिका निभाने की, आने की तैयारी में संलग्न है। फिर भेदभाव किस बात का? लड़की और लड़के में अंतर किसलिए? दोनों के मूल्यांकन में न्याय-तुला की डंडी मारने की मान्यता किसलिए?

नारी की पराधीनता का एक रूप यह है कि उसे परदे में, पिंजड़े में वंदीगृह की कोठरी में ही कैद रहना चाहिए। इस मान्यता को अपनाकर नारी को असहाय, अनुभवहीन और अनुगामी ही बताया जाता रहा है। अबला की स्थिति में पहुँचने पर वह अब आक्रांताओं का साहसपूर्वक मुकाबला कर सकने की भी हिम्मत गँवा बैठी है, आड़े समय में अपना और अपने बच्चों का पेट पाल सकने तक की स्थिति में नहीं रही है। व्यवसाय चलाना और ऊँचे पद का दायित्व निभाना तो दूर, औसतन पारिवारिक व्यवस्था से संबंधित अनेक कार्यों में, हाट-बाजार, अस्पताल तथा अन्य किसी विभाग का सहयोग पाने के लिए जाने में भी झिझक-संकोच से डरी रहकर मूक-बधिर होने जैसा परिचय देती है। इस प्रकार की विवशता उत्पन्न करने के लिए जो भी तत्त्व जिम्मेदार होंगे, उन्हें पश्चात्तापपूर्वक अपने कदम पीछे हटाने पड़ेंगे। परिवार-परिकर के बीच नर और नारी बिना किसी भय व संकोच के जीवन-यापन करते रह सकते हैं, तो फिर बड़े परिवार-समाज में आवश्यक कामों के लिए आने-जाने में किसी संरक्षक को ही साथ लेकर जाना क्यों अनिवार्य होना चाहिए?

विवाह की बात तय करने में अभिभावकों की मरजी ही क्यों चले? यदि लड़की को भी लड़कों के समान ही सुयोग्य बनाने के लिए अधिक समय तक शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने का औचित्य हो, तो फिर उसे बाल-विवाह के बंधनों में बँधकर घसीटते हुए किसी

भी दूसरे पिंजड़े में स्थानांतरित किए जाने का क्या औचित्य हो सकता है ? विवाह के बाद योग्यता-संवर्द्धन के अवसर पूरी तरह समाप्त क्यों हो जाने चाहिए ? अभिभावकों के घर लड़की ने जितनी योग्यता और सम्मान अर्जित किया है, उससे आगे की प्रगति का क्रम जारी रखने का उत्तरदायित्व ससुराल वालों को क्यों नहीं निभाना चाहिए ? विवाहित होने के बाद प्रगति के सभी अवसर छिन जाने और मात्र क्रीतदासी की भूमिका निभाते रहने तक ही उसे क्यों बाध्य रखा जाना चाहिए ? ये प्रश्न ऐसे हैं, जिनका उचित उत्तर हर विचारशील को, हर न्यायनिष्ठ को व हर दूरदर्शी को छाती पर हाथ रखकर देना चाहिए और सोचना चाहिए कि यदि उन्हें इस प्रकार बाध्य रहने के लिए विवश किया जाता, तो कितनी व्यथा-वेदना सहनी पड़ती। अधिकांश बालिकाओं द्वारा विवाह के बाद अपना शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य गँवा बैठना भी इसीलिए देखा जाता है कि उन्हें आजन्म कैदी-जीवन जीकर किस प्रकार दिन गुजारते रहने के अतिरिक्त और कोई भविष्य दिखाई नहीं देता।

दांपत्य की गरिमा भुलाई न जाए

जिस पति के साथ विवाह के रूप में ग्रंथि-बंधन और पाणिग्रहण संस्कार संपन्न हुआ है, उसका सहज उत्तरदायित्व बनता है कि पत्नी को कम-से-कम अपनी योग्यता के स्तर तक पहुँचाने के लिए प्राणपण से प्रयत्न करे ही। यदि उसकी ओर से उपेक्षा बरती जाती है, तो उसके विवाह को अपहरण के अतिरिक्त और क्या कहा जाएगा ?

विवाह से कामुकता की आग बुझाने का कानूनी अधिकार भले ही मिल जाता है, पर नैतिकता के कठोर अनुबंध इस दिशा में उदासीनता न बरतने के लिए फिर भी बाध्य करते रहते हैं। कामाचार का सीधा प्रतिफल है—संतानोत्पादन। किसी जमाने में जब पशु चराने और लकड़ी बीनने का काम बचपन में ही बालकों को सोंप दिया जाता था, तब वे परिवार के लिए आर्थिक रूप से भार नहीं बनते थे, पर अब तो उनका सभ्यजनों की तरह लालन-पालन

करना, उनके लिए शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था बनाना, खेलने आदि के लिए घरों में खुले स्थान होना आदि ऐसे कितने ही नए प्रश्न संतानोत्पादन के साथ जुड़े हैं, जिनका इस घोर महँगाई के जमाने में निभा सकना एक प्रकार से दुस्साहस जैसा ही है। अंधों की तरह कामुकता के क्षेत्र में बिना परिणाम सोचे उड़ानें भरने लगना एक प्रकार से अपनी आर्थिक स्थिति पर व पत्नी के स्वास्थ्य पर, बच्चों के भविष्य पर कुठाराघात करने के समान है। नया आगंतुक संयुक्त परिवार के सदस्यों की सुविधाओं में कटौती करता है। विपन्न परिस्थितियों में पला हुआ बालक अपने लिए, अभिभावकों के लिए और समस्त संसार के लिए अभिशाप बनकर ही रह सकता है। इन तथ्यों के विपरीत विवाह होने के दिन से ही प्रतीक्षा की जाने लगती है कि संतानोत्पादन का समय आने में देर न लगे। ऐसी मान्यताओं को अदूरदर्शिता और घोर प्रतिगामिता के अतिरिक्त और क्या कहा जाए?

विवाह तब होना चाहिए, जब दोनों एक-दूसरे को सहमत कर सकने और आगे बढ़ाने के लिए समुचित योगदान दे सकने की स्थिति पर विचार कर चुके हों। यदि विवाह से पूर्व ऐसा नहीं बन पड़ा हो, तो किसी भी दंपत्ति को संतानोत्पादन की नई और भारी-भरकम जिम्मेदारी सँभालने से पहले ही उस कमी की पूर्ति कर लेनी चाहिए। जितना समय, धन और मनोयोग संतान के लिए लगाया जाता है, उतना कष्टसहन यदि पति-पत्नी एक-दूसरे के दायित्व के लिए करते रहें तो उसे हर दृष्टि से कहीं अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण माना जाएगा। प्रगति-क्रम आजीवन चलता रह सके और इसके लिए पति-पत्नी एक-दूसरे के लिए पूरी तरह समर्पित रहें, यह मानवीय गरिमा को शोभायमान रखने वाली नीतिमत्ता है। इसमें सबसे बड़ी बाधा स्वच्छंद यौनाचार की है, जिसके फलस्वरूप दोनों एक-दूसरे को शारीरिक तथा मानसिक रूप से रुग्ण बनाते हैं और बेवजह असाधारण भार वहन की अनीति अपनाते हैं, जो नहीं ही अपनाई जानी चाहिए।

विकृत मान्यताओं में एक अति भयंकर अनौचित्य यह घुसा है कि कामुकता के कुचक्र में शरीर और चिंतन को बेतरह उलझा लिया जाए तथा बड़े होने पर भी अपनी क्षमताओं को बच्चों के फुलझड़ी जलाने के खिलवाड़ की तरह नष्ट करके मनचलेपन का परिचय दिया, हानि-लाभ पर कुछ भी विचार न किया जाए। कामुकता की शारीरिक क्षति की चर्चा तो ब्रह्मचर्य-विवेचना के संबंध में होती भी रहती है। फिर यह किसी को स्मरण भी नहीं आता कि अश्लील चिंतन से मानसिक क्षमताओं का किस प्रकार सर्वनाश होता है तथा इस दुश्चिंतन में उलझा हुआ मस्तिष्क कुछ उच्चस्तरीय चिंतन कर सकने और बौद्धिक प्रतिभा के प्रदर्शन में सक्षम ही नहीं रहता।

नशेबाजी की कुटेव के उपरांत आत्मघात के लिए प्रेरित करने वाली कामुकता ही है। इसी ने नारी के प्रति पूज्यभाव रखने और उसके उत्कर्ष में सहायता दे सकने वाली सदाशयता को बुरी तरह छिन्न-भिन्न किया है। इस दिशा में बढ़ते हुए उत्साह की उड़ान को रोका न गया तो उससे नारी पर तो वज्रपात होता ही रहेगा, बचेगा वह भी नहीं, जिसने इस दिशा में उत्साह दिखाया और सरंजाम जुटाया है। जीवनी शक्ति को निचोड़कर नाली में बहा देना, इतना अबुद्धिमत्तापूर्ण है कि उसमें असाधारण अभिरुचि लेने वाले को आत्मघाती के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता।

नर और नारी के बीच भाई-भाई जैसा व बहन-बहन जैसा सहयोगी रिश्ता रहना चाहिए। संतानोत्पादन की जब अनिवार्य आवश्यकता सूझ पड़े, तभी उस खौलते पानी में हाथ डालना चाहिए। विश्व एवं समाज की स्थिति को देखते हुए स्पष्ट होता है कि इन दिनों तो बढ़ती जनसंख्या का अभिशाप ही अकेला ऐसा है, जिससे हर क्षेत्र में इतनी समस्याएँ, कठिनाइयाँ और विपत्तियाँ बढ़ती जाती हैं, जिनके कारण संतुलन बैठाने के लिए प्रगति के कोई भी प्रयास संतोषजनक रीति से सफल हो नहीं पा रहे हैं। अच्छा होता, यदि अपना, साथी का, परिवार का व समाज की

स्थिति का पर्यवेक्षण करते हुए बीसवीं सदी के इन अंतिम वर्षों में तो प्रजनन को एक प्रकार से पूर्ण विराम दे दिया जाए और इक्कीसवीं सदी के लिए वैसी स्थिति बनाई जाए, जिससे विभीषिकाओं से जूझने की अपेक्षा प्रगति का सरंजाम जुटाने के लिए उपलब्ध साधनों को लगाया जा सकना संभव हो सके। कामुकता के प्रति असाधारण उत्साह कभी क्षम्य रहा होगा, पर अब तो उस दुश्चिंतन को यथावत् अपनाए रहने पर खतरे-ही-खतरे हैं—आतिशबाजी के खेल खेलने की तरह उस रुझान पर भी समय रहते अंकुश प्राप्त कर लिया जाए। नारी-उत्कर्ष के संदर्भ में तो इस परिमार्जन को एक-महती आवश्यकता की तरह ही हर किसी को हृदयंगम करना चाहिए। स्त्रियाँ इस कोल्हू में पिसने से बचने की राहत पाने पर अपनी उन क्षमताओं को कार्यान्वित कर सकेंगी, जिनके आधार पर उनकी नवयुग में महती भूमिका हो सकती है। नर-नारी के बीच अश्लीलता की गंध नहीं आने देनी चाहिए, वरन उस सघन सहकारिता को विकसित करना चाहिए, जिससे आत्मीयता, आदर्शवादिता और पारस्परिक सेवा-साधना का सुयोग बन सकता है। सामर्थ्यों को बचाकर उन्हें लोकहित के कार्यों में लगाया जा सकता है, जिनकी कि इस नवयुग के अवतरण में असाधारण आवश्यकता है।

दुश्चिंतन हटाएँ—सृजन अपनाएँ

संत ज्ञानेश्वर अपने बहन-भाइयों के साथ लोकमंगल के लिए कार्यक्षेत्र में उतरे थे। दूरदर्शियों और ऋषियों ने मिल-जुलकर बिना कामुकता के फेर में पड़े इतने अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किए थे कि उनकी संयुक्त क्षमता ने संसार को कृत-कृत्य कर दिया। लोकनायक जयप्रकाश नारायण, आचार्य कृपलानी एवं जापान के गांधी कागावा जैसे महामानवों ने एक और एक मिलकर ग्यारह बनने की संभावना पूरी तरह जानने के उपरांत ही विवाह किए थे और उसके साथ उच्चस्तरीय

आदर्शों को जुड़ा रखकर विवाह शब्द को सार्थक बनाया था। इन दिनों भी ऐसे ही आदर्श विवाह अपनाए जा सकें, तो पारस्परिक सघन सहयोग को जीवंत रखने एवं अनेकानेक कठिनाइयाँ सरल करने और सर्वतोमुखी प्रगति के संदर्भ में एक-से-एक बड़े काम करने के लिए सामने पड़े हैं। इसे संयोग ही कहना चाहिए कि इन दिनों विकासोन्मुखी सेवा-साधना और अवांछनीयताओं से जूझने वाली संघर्षशीलता के दोहरे पराक्रम दिखाने की अनिवार्य आवश्यकता पड़ रही है। अच्छा हो कि इन दिनों ऐसी युग्म आत्माएँ—पति-पत्नी मिलकर संयुक्त प्रयासों में भागीदार बनकर विवाह-संस्था को सार्थक करें। ध्यान रखने योग्य बात यही है कि संतानोत्पादन में प्रवृत्त होने के उपरांत कोई व्यक्ति या दंपती मात्र लोभ-मोह के निविड़ जंजाल में ऐसी बुरी तरह फँस जाता है कि फिर आदर्शों के निर्वाह में कुछ कहने योग्य पुरुषार्थ कर सकना संभव ही नहीं रहता।

यों अतिशय व्यस्त और प्रतिबंधित महिलाएँ भी अपनी शिक्षा, स्वावलंबन तथा योग्यता की अभिवृद्धि में तथा अपने परिवार में प्रगतिशीलता के बीज बोने-उगाने में कुछ तो कर ही सकती हैं—जिनके साथ निकटवर्ती वास्ता रहता है, उन्हें श्रमशीलता, मितव्ययता, शिष्टता, सुव्यवस्था, उदार सहकारिता जैसे सद्गुणों से संपन्न रहने के लिए उत्साह उत्पन्न कर सकती हैं। परिवार के सदस्यों को एक हद तक संयम, प्रगतिशीलता का पक्षधर बनाने के लिए प्रयत्नरत रह सकती हैं, कुरीतियों और मूढ़ मान्यताओं को अपने छोटे क्षेत्र में से खर-पतवार की तरह उखाड़ फेंकने के लिए कुछ-न-कुछ तो कर ही सकती हैं; महिला-संगठनों में सम्मिलित होने के लिए उत्कंठा बनाए रह सकती हैं।

जिन नारियों के बंधन ढीले हैं, उत्तरदायित्व हलके हैं और शिक्षा का न्यूनाधिक सौभाग्य प्राप्त है, उनके लिए तो युगधर्म यही बन जाता है कि वे बचे समय में आरामतलबी, खुदगरजी

और संबंधियों के मोह-माया से थोड़ा-बहुत उबरें और उस समय की बचत से अपने संपर्क-क्षेत्र को प्रगति-पथ पर अग्रसर करने के लिए अपने बड़े-चढ़े अनुदान प्रस्तुत करें। संपन्न परिवारों में नौकर-चाकर काम करते हैं। उन्हें समय मिल जाता है। बड़े परिवारों में यदि उदार संवेदना जगाई जा सके, तो परिवार पीछे एक-दो महिलाओं का समय सेवाकार्यों के लिए लगाते रहने का प्रबंध हो सकता है। नौकरी करने वाली महिलाएँ अधिकांश समय घर से बाहर रहती हैं और उनके हिस्से का काम घर के अन्य लोग मिल-जुलकर संपन्न कर लेते हैं। नारी-उत्कर्ष की आवश्यकता को ईश्वर की नौकरी मान लिया जाए और उन्हें उस प्रयोजन के लिए निश्चिंतता-पूर्वक काम करने के लिए परिवार के अन्य सदस्य योगदान दे सकें, तो इतने भर से बड़ा काम हो सकता है। अध्यापिकाओं जैसी नौकरी जिन्हें उपलब्ध है, वे अपनी छात्राओं और उनके परिवारों के साथ संपर्क साधकर ऐसा बहुत कुछ कर सकती हैं, जो प्रगतिशीलता का पक्षधर हो। सेवानिवृत्त महिलाएँ तो तफरी में समय काटने की अपेक्षा प्रस्तुत नवजागरण-अभियान में अपनी भागीदारी सम्मिलित कर ही सकती हैं। विधवाएँ व परित्यक्ताएँ तो अपने खाली समय में दुर्भाग्य का रोना रोने की अपेक्षा समय की महती माँग को पूरा करने में संलग्न रहकर कुयोग को सुखद संयोग में बदल सकती हैं। कितनी ही लड़कियों को भारी दहेज के साधन न जुट पाने के कारण अविवाहित रहने के लिए विवश होना पड़ता है। ऐसी महिलाएँ दिन काटने के लिए नौकरी के लिए भटकें या किन्हीं संबंधियों की सहायता-अनुकंपा पर आश्रित रहें, उसकी अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि महिला-जागरण की ईश्वरीय माँग की सहयोगिनी बनकर दुर्भाग्य को सौभाग्य में बदलें और समय की माँग पूरी करने में अपने समय व श्रम का नियोजन करके उपलब्ध मानवीय जीवन को अपनी साहसिकता के बल पर सार्थक करें।

दो बड़े कदम—शिक्षा और स्वावलंबन

नारी-उत्थान के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता शिक्षा-संवर्द्धन की है। मध्यवर्गीय परिवारों की लड़कियाँ तो स्कूल जाने लगती हैं, पर घर-गृहस्थी वाली प्रौढ़ महिलाओं के लिए वैसा सुयोग ही नहीं बन पड़ता। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए वेतनभोगी अध्यापिकाएँ जुटाने की अपेक्षा सही समाधान यही हो सकता है कि शिक्षित महिलाएँ अपने घर-परिवार के कार्यों में से किसी प्रकार समय बचाकर अपने समीपवर्ती क्षेत्र में प्रौढ़-पाठशालाओं को चलाने के लिए भरसक प्रयत्न करें, दूसरी शिक्षित महिलाओं को प्रोत्साहित करके उन्हें इस कार्य में लगाएँ, वयोवृद्ध अन्य शिक्षितों को भी खाली समय उनके साथ लगने के लिए प्रेरित करें। प्रगति के लिए शिक्षा की अनिवार्य आवश्यकता समझी जानी चाहिए। प्रयत्न यह होना चाहिए कि किसी भी आयु की, किसी भी स्थिति में रहने वाली महिलाओं में से प्रत्येक को साक्षर बनने का अवसर मिले। अक्षरज्ञान होते ही उन्हें ऐसी सरल पुस्तकें मिलनी चाहिए, जो व्यक्तित्व निखारने का, परिवार को सुदृढ़ बनाने का तथा अपने समुदाय को हर दृष्टि से समुन्नत बनाने का मार्गदर्शन दे सकें। इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि अपने देश के लेखकों व प्रकाशकों का ध्यान इस ओर नहीं गया। इस कमी की पूर्ति के लिए जनस्तर की स्वेच्छा सेवी संस्थाओं को आगे आना चाहिए और अपने देश की महिलाओं को जिस स्तर से रहना पड़ रहा है, उससे ऊँचा उठाने वाले साहित्य की कमी को पूरा करना चाहिए। इस निमित्त वहाँ महिला-पुस्तकालय भी चलें, जहाँ उनकी शिक्षा का किसी प्रकार कोई छोटा-बड़ा प्रयत्न बन पड़ना संभव हो सकता हो।

शिक्षा के साथ ही दूसरा चरण स्वावलंबन की दिशा में उठना चाहिए। स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप कोई-न-कोई कुटीर उद्योग हर क्षेत्र में चल सकते हैं। उन्हें ढूँढ़ा और सहकारिता के

आधार पर चलाया जा सके तो कच्चा माल मिलने और तैयार माल बेचने का कार्य स्थानीय सहकारी समितियों द्वारा संपन्न हो सकता है। आवश्यक नहीं कि गरीबों द्वारा ही प्रयास अपनाया जाए, स्वावलंबन एक ऐसी प्रवृत्ति है, जिसे हर व्यक्ति द्वारा अपनाया जाना चाहिए। नारी का अवमूल्यन इसी कारण हुआ है कि गृहकार्यों में दिन-रात लगी रहने पर भी प्रत्यक्षतः वे कुछ कमाई करती दिखाई नहीं पड़तीं। इस स्थिति के समाधान के लिए जापान की तरह अपने देश में भी प्रयत्न होने चाहिए, जहाँ कुटीर उद्योगों के लिए हर क्षेत्र में किसी-न-किसी प्रकार की सुविधा उपलब्ध है। स्त्रियाँ कुछ कमाने लगें या कोई अन्य प्रशंसा योग्य कार्य करने पर उतरें, तो घर के पुरुषों को उसमें हेठी लगती है और वे उसका विरोध तक करते हैं। इस विचार-विकृति से निपटने के लिए आवश्यक है कि गरीब-अमीर सभी घरों में कुटीर उद्योग जैसे स्वावलंबन के उपायों का प्रचलन किया जाए। न्यूनतम शाक-वाटिका तो हर घर में लगाई ही जा सकती है। स्त्रियों को भी आर्थिक स्वावलंबन की आवश्यकता है। उनकी भी निजी आजीविका होनी चाहिए, ताकि उन्हें परावलंबन का दबाव हर घड़ी सहना न पड़े और वे भी स्वेच्छानुसार कुछ-न-कुछ प्रगति-प्रक्रिया के लिए सुविधा-साधन जुटा सकें।

नारी-अवमूल्यन को रोका जाए

बच्चों के पेट में रखने के लिए तो नारी-समाज ही विवश है, पर अब यह माँग संसार भर में उठ रही है कि उनके पालन-पोषण में पिता की भी उपयुक्त भागीदारी होनी चाहिए और उन्हें भी दुलार देने, खेल खिलाने, समस्याओं को निपटाने तथा सुसंस्कारी बनाने में अपना समय नियमित रूप से लगाना चाहिए, भले ही वह आर्थिक अथवा किसी और दृष्टि से कितना ही मूल्यवान क्यों न हो! अभी कुछ ही महीनों पूर्व स्वीडन सरकार तथा समाज ने यह निर्धारण किया है कि जिस प्रकार महिलाओं को प्रसूति के अवसर पर

नौकरियों से छुट्टी लेनी पड़ती है, उसी प्रकार पुरुष भी बच्चों के पालन-पोषण में अपनी सहभागी स्तर की जिम्मेदारी उठाएँ और छुट्टी लेकर बच्चों के साथ रहें। "पुरुषों द्वारा इस पर आपत्ति की गई कि इससे उनके अनुभव में कमी पड़ने से पदोन्नति रुकेगी तथा प्रतिस्पर्द्धाओं में बैठकर ऊँचा पद पाने में असमर्थ रहेंगे।" यह ऐतराज इस आधार पर रद्द कर दिया गया कि यही तर्क महिलाएँ भी तो दे सकती हैं। उन्हें भी तो घाटा उठाना और कष्ट सहना पड़ता है। संतानोत्पादन में पुरुष भी उतना ही उत्साह दिखाता है तो फिर इस कृत्य के फलितार्थों से निबटने में क्यों अपनी जिम्मेदारी से पल्ला छुड़ाकर भागने का प्रयत्न करना चाहिए? कानून पास हो जाने से अब उसका दबाव पुरुषों पर भी पड़ेगा। अब तक दंड भुगतने के लिए अकेले नारी को ही बाध्य किया जाता रहा है, अब पुरुषों को भी नफे में ही नहीं, नुकसान में भी सहभागी रहने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। आरंभ भले ही स्वीडन से हुआ हो, पर उसका विस्तार सभी जगह होगा। सूरज भले पर्वत शिखर पर से उगता दिखाई पड़े, पर उसका प्रकाश क्रमशः समस्त संसार पर हो जाएगा। जापान में राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं के उत्साहपूर्वक बाजी मारने का प्रभाव भारत पर पड़ा है और उन्हें ३० प्रतिशत स्थान सुरक्षित करा लेने का अवसर मिला है। अब यह प्रचलन आगे बढ़ेगा और महिलाओं को हेय मानने, त्रास देने, व असमानता के भेदभाव बरतने का प्रचलन क्रमशः संसार के सभी भागों से हटता चला जाएगा, भले ही इससे इच्छित लाभ उठाने के लिए कई तर्क प्रस्तुत करते रहने वालों को कुड़कुड़ाते ही क्यों न रहना पड़े, उनका विरोध नियति के अभिनव निर्माण के सामने टिक न सकेगा।

जो होकर ही रहना है, उसके साथ टकराने की अपेक्षा लाभ इसी में है कि समय से पूर्व समझौता करके अपनी सदाशयता की कुछ पहचान तो छोड़ ही दी जाए। अंगरेजों ने बदलते समय को भाँप लिया था, इसलिए उलटी लातें खाकर खदेड़े जाने का कटु प्रसंग उपस्थित नहीं होने दिया और समझौते की नीति

अपनाकर विदाई के दिनों कटुता के स्थान पर सद्भावना सहित वापास गए। अस्तु, भारत अभी तक स्वेच्छापूर्वक राष्ट्रमंडल का सदस्य बना हुआ है।

हरिजनों-आदिवासियों को आरक्षण एवं विशेष सुविधाएँ देकर समय रहते समानता का अधिकार स्वीकार कर लिया गया है। गलतियों का प्रायश्चित्त हो रहा है। यदि इस सद्भावना का परिचय न दिया गया होता, तो निश्चय ही संसार में बह रही विकास की हवा उन्हें उत्तेजित किए बिना न रहती। जो परिवर्तन इन दिनों अच्छे वातावरण में हो रहा है, उसी के लिए दुराग्रह पर अड़े रहने से अपेक्षाकृत कहीं अधिक घाटे का सामना करना पड़ता। महिलाओं के प्रति भी पुरुषवर्ग द्वारा समय रहते न्यायोचित अधिकारों की माँग को मान्यता दे दी जाती है तो इसमें दोनों ही पक्ष नफे में रहेंगे, अन्यथा विग्रह की टकराव भरी स्थिति आने तक बात बढ़ जाए, तो फिर भूल सुधारने में देर लग जाएगी। संसार में ऐसे भी बहुत क्षेत्र हैं, जहाँ नारी-प्रधान समाज-व्यवस्था चल रही है। वहाँ समूचे अधिकार महिलाओं के ही हाथ में रहते हैं। नर को तो अपनी विवशता के कारण उनका आज्ञाकारी-अनुवर्ती मात्र बनकर रहना पड़ता है। अच्छा हो कि ऐसा आमूल-चूल परिवर्तन का सामना अपने समाज को न करना पड़े। पिछली शताब्दी में अगणित राजनीतिक, सामाजिक एवं बौद्धिक क्रांतियाँ हुई हैं। उनमें जीती तो यथार्थता और न्याय-निष्ठा ही है, पर वह उथल-पुथल ऐसे घटनाक्रमों का इतिहास अपने पीछे छोड़ गई है, जिनको स्मरण करके रोमांच हो आता है। घृणा-द्वेष के भाव अभी तक भी विचारवानों के कान में यथावत् बने हुए हैं और पराजितों के प्रति सहानुभूति होने की अपेक्षा तिरस्कार भरी प्रतिक्रिया ही व्यक्त की जाती रहती है। वैसे दुर्दिन हम सबको न देखने पड़ें, इसी में समझदारी है। समता और एकता का अटल परिवर्तन किसी के रोके रुकने वाला तो है नहीं, अधिक-से-अधिक इतना हो सकता है कि भवितव्यता को चरितार्थ होने में समय लगे।

नारी समस्या के पीछे अनीतिमूलक दुर्भावनाओं का अहंकारी मानस ही प्रमुख बाधा बना हुआ है। यदि औचित्य को अपना लिया जाए और लाभ-हानि का सही आकलन कर लिया जाए, तो प्रतीत होगा कि संघर्ष में उलझने की अपेक्षा सहयोग की नीति अपनाना अधिक श्रेयस्कर है। उठने में सहायता देकर एहसान जताने और कृतज्ञता भरी सद्भावना उपलब्ध करने में लाभ-ही-लाभ है। इस लाभ को इन दिनों के सुअवसर पर उठाया न जा सका, तो समय निकल जाने पर अपेक्षाकृत कहीं अधिक घाटा सहन करना पड़ेगा। समता और एकता के सिद्धांत संसार भर के दुखी समाज को अपना लिए जाने के लिए बाध्य कर रहे हैं। यह हो ही नहीं सकता कि आधी जनसंख्या नारी को उस महान परिवर्तन से विलग रखने के कोई प्रयत्न देर तक सफल होते रहें। सामंतवाद चला गया। अब सामाजिक सामंतवाद की विदाई की वेला भी आ ही पहुँची है। उसे वापस नहीं लौटांया जा सकता।

उपयुक्त यही होगा कि भारत के जिस अहिंसक सत्याग्रह का समर्थन देश की पूरी जनता ने किया और असंभव दीखने वाले नागपाश से छूटने में सफलता प्राप्त कर ली, अब उसी का उत्तरार्द्ध सामाजिक क्रांति के रूप में उभरना चाहिए। न्याय को मान्यता दिलाने में भी उसी रीति-नीति को अपनाया जाए, जो सत्याग्रह के दिनों समूचे देश में ही नहीं, संसार भर में उभर आई थी। नारी-मुक्ति आंदोलन पाश्चात्य देशों में कटुता भरे वातावरण में संघर्ष और प्रतिशोध के रूप में उभर रहा है। अच्छा हो कि वे टकराव से बचें और समझौतावादी उदारता अपनाने भर से कठिन दीखने वाला मोरचा सुलह-सफाई के वातावरण में ही निपट जाए।

इसके लिए मात्र भ्रांतियों का निराकरण ही वह कार्य है, जिससे कायाकल्प जैसा सुखद-सुयोग सहज ही हस्तगत हो सकता है। यह स्वीकार कर ही लिया जाना चाहिए कि नर और नारी, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एकता और सद्भावना के वातावरण

में ही उनके बीच सहकारिता विकसित हो सकती है और अक्षुण्ण बनी रह सकती है। लड़के-लड़की के बीच, कन्या और वधू के बीच बरता जाने वाला पक्षपातपूर्ण भेदभाव अब पूरी तरह समाप्त होना ही चाहिए। दोनों को दो हाथ, दो पैर, दो आँख और दो कान की तरह परस्पर सहयोगी और समान महत्त्व पाने के अधिकारी मानकर चलने में ही समझदारी है।

एकता और समता का सुयोग बने

पति और पत्नी में से कोई किसी का दास और स्वामी नहीं। दोनों की स्थिति भाई-भाई के बीच अथवा बहन-बहन के बीच चलने वाली सद्भावना और सहकारिता की रहनी चाहिए। मैत्री इसी आधार पर स्थिर रहती और फलती-फूलती है कि अपने लाभ का ध्यान कम और साथी के हित सधने का ध्यान ज्यादा रखा जाए। इतना भर परिवर्तन कर लेने से हमारी पारिवारिक और सामाजिक स्थिति में इतना बड़ा परिवर्तन उभर आएगा, जिसकी सराहना करते-करते सौभाग्य का अनायास अवतरण होने जैसा उल्लास अनुभव किया जा सके।

अमृत के बीच विष घोलने वाली कामुकता की कुदृष्टि को हटाया-मिटाया जा सके, तो हमारे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और नैतिक स्वास्थ्य में इतना बड़ा अंतर हो सकता है, जिसे नवजीवन के पुनरुत्थान की संज्ञा दी जा सके। इन दिनों संध्याकाल है। इस पुण्य वेला में यौनाचार जैसे हेय कार्य निषिद्ध हैं। सूर्यग्रहण या चंद्रग्रहण की घड़ियों में सभी विवेकशील संयम बरतते और उन घड़ियों को श्रेष्ठ पुण्य कृत्य के लिए सुरक्षित रखते हैं। युगसंधि का यह समय भी ऐसा ही है, जिसमें प्रजनन-कृत्य को तो विराम मिलना ही चाहिए। कुसमय के गर्भधारण जब फलित होकर धरती पर आते हैं, तो उनमें अनेक विकृतियाँ पाई जाती हैं। युगसंध्या की वेला नारी के पुनरुत्थान के लिए भाव भरे व्रत करने के लिए है। इसी समय

में प्रजनन का उत्साह ठंढा न होने दिया गया तो उसके अनावश्यक ताम-झाम में बहुत कुछ जलेगा-सुलगेगा, जबकि इन दिनों संसार का प्रमुख संकट बहुप्रजनन ही बना हुआ है। यदि इन दिनों उसे रोक दिया जाए, तो वह स्थिति फिर वापस आ सकती है, जिसमें सतयुग में समस्त धरती पर मात्र कुछ करोड़ मनुष्य रहते और दैवी जीवन जीते थे।

नर और नारी, जितना भारी दायित्व यौनाचार में निरत होकर वहन करते हैं, वह सामान्य नहीं असामान्य है। नारी अपना स्वास्थ्य और अवकाश पूरी तरह गँवा बैठती है। नर को इस दुष्प्रवृत्ति के लिए प्रायः बीस वर्ष की सजा झेलनी पड़ती है। इतने दिनों उसे मात्र बढ़े हुए परिवार की अनेकानेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपना समस्त कौशल विसर्जित करना पड़ता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए, जिन्हें जीवन में कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करने हैं, वे नए उत्पादन से बचते हैं और विश्व-परिवार के वर्तमान सदस्यों को ही अपना समझकर उनके अभ्युदय हेतु ठीक वैसे ही प्रयत्न निष्ठापूर्वक करते रहते हैं, जैसे कि विरासत छोड़कर अपने प्रजनन की जिम्मेदारी निभाने में खरचना पड़ता है।

प्रजनन पर तो रोक लगे ही

इन दिनों यह आवश्यकता कई कारणों से कई गुनी बढ़ गई है। एक तो इसलिए कि बीसवीं सदी के अंतकाल में सूक्ष्मजगत सृजन और समापन के संदर्भ में अत्यंत उलझा रहेगा। उसके दुष्प्रभाव इन दिनों की उत्पत्ति पर पड़े बिना रह नहीं सकते। उसके कारण अनेक त्रास सहने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि इक्कीसवीं सदी के अंत तक प्रजनन रोका जाए और इक्कीसवीं सदी में अवतरित होने वाली दिव्य आत्माओं से अपनी वंश-परंपरा को धन्य होने का लाभ उसी प्रकार प्राप्त किया जाए, जिस प्रकार कि तपस्वी अपनी संयम-साधना का प्रतिफल सिद्धियों और विभूतियों के रूप में प्राप्त करते रहे हैं।

दूसरा कारण यह है कि इन दिनों हर नर-नारी के लिए महाकाल का आमंत्रण और युगधर्म का निमंत्रण यह है कि नारी-पुनरुत्थान के लिए सर्वतोभावेन समर्पित हों और पीढ़ियों से चलते आ रहे अनाचार का प्रायश्चित्त करते हुए पूर्वजों की भूलों का परिमार्जन करें। देश, समाज को ऊँचा उठाने के लिए कोई समय ऐसा भी आता है, जिसकी कीमत सामान्य दिनों की तुलना में अनेक गुनी अधिक होती है। युद्धकाल में कई बार देश के हर समर्थ को सेना में अनिवार्यतः भरती किया जाता है। समझा जाना चाहिए कि ईश्वर के तत्त्वाधान में हर समर्थ के लिए आधी जनसंख्या को त्राण दिए जाने, उसको प्राचीन परंपरा में पुनः सुसज्जित करने की ठीक वेला यही है। उसमें लोभ-मोह की, विशेषतः काम-कौतुक की उपेक्षा की जा सके, तो हर किसी को अपने-अपने ढंग से थोड़ा-बहुत अच्छा करने का ऐसा आधार बन सकता है, जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की जा सके और अपना समाज फिर विश्व का सर्वतोमुखी नेतृत्व कर सके। यह बुद्धकाल में उभरे परिव्राजकों-परिव्राजिकाओं के निकल पड़ने जैसा समय है। इसी आधार पर आधी दुनिया के कल्याण की श्रेय-साधना बन पड़ सकती है।

तीसरी बात यह है कि संसार पर अणुयुद्ध, प्रदूषण व स्वार्थ-संघर्ष की ही तरह जनसंख्या-वृद्धि की विभीषिका भी सर्वनाशी घटनाओं की तरह छाई हुई है। यह संकट न टला तो समझना चाहिए कि विभिन्न क्षेत्रों में चल रहे प्रगति के उपायों में से एक भी सफल न हो सकेगा और विनाशकारी संभावनाओं का दौर दिन-प्रतिदिन अधिक भयावह होता चला जाएगा। कम-से-कम युगसंधि के इन दिनों में तो इस संदर्भ में विराम लग सके, तो संसार भर की संस्कृति को साँस लेने का अवसर मिल सकता है।

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त एक और भी चौथी बड़ी बात है कि इन दिनों नारी-कल्याण, जिसे दूसरे शब्दों में विश्व-कल्याण कहा जा सकता है, उसके लिए अभीष्ट अवकाश मिल सकता है। यदि उठती आयु का उल्लास देश-रक्षा की सैन्य सेवा में लगाने की

तरह नियोजित किया जा सके, तो समझना चाहिए कि नवसृजन की बहुमुखी संभावनाओं का द्वार खुल ही गया है।

हिमालय से भारत की प्रमुख नदियाँ निकलतीं और देश भर की जल की आवश्यकता की अधिकांश पूर्ति करती हैं। समझना चाहिए कि चेतना-क्षेत्र का हिमालय इन दिनों शांतिकुंज से सारे विश्व में अपने ढंग की बहुमुखी प्रक्रियाओं का सूत्र-संचालन कर रहा है। उन्हीं में एक महान प्रयोजन है—नारी-जागरण। इसके लिए प्रचार-प्रसार की महान परिवर्तन प्रस्तुत करने वाली प्रक्रिया तो चल ही रही है। व्यावहारिक मार्गदर्शन के लिए एक-एक महीने के नौ-नौ दिन के प्रशिक्षण-सत्र भी चलते हैं। इनमें प्रवेश पाने वाले नए स्तर पर चेतना-प्रेरणा शक्ति लेकर लौटते हैं, साथ ही वह मार्गदर्शन भी प्राप्त करते रहते हैं, जिसके अनुसार अपनी स्थिति से तालमेल बैठाते हुए वह परामर्श-पथ अपनाया जा सके, जो स्वार्थदृष्टि से भी उतना ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है।

जिनके अंतरतम में इन दिनों नारी-उत्थान की सेवा-साधना और तपश्चर्या करने का मन हो, वे उपयुक्त दिशा पाने के लिए शांतिकुंज, हरिद्वार से संपर्क कर सकते हैं और निरंतर चलने वाले सत्रों में से किसी में प्रवेश पाने के लिए आवेदन कर सकते हैं।

जिन्हें इसी युगसंधि-अवधि में विवाह-बंधन में बँधना आवश्यक हो गया हो, वे कम-से-कम इतना तो करें ही कि दहेज-जेवर और धूम-धाम से सर्वथा रहित संबंध करें। ऐसा सुयोग अपने यहाँ न बन पा रहा हो तो उसके लिए वे शांतिकुंज आकर विवाह कर लें, बिना किसी प्रकार का खरच किए विवाह संपन्न करा लें। जिनके बच्चे हैं, उनसे यह प्रतिज्ञाएँ कराई जाएँ कि वे कम-से-कम अपने लड़कों की तो खरचीली शादियाँ करेंगे ही नहीं। नारी-उत्कर्ष के लिए यह आंदोलन भी अनिवार्य रूप से आवश्यक है। युग की आवश्यकता और कार्य की महत्ता समझते हुए हर भावनाशील-प्रतिभावान को नारी-जागरण की दिशा में कुछ-न-कुछ ठोस प्रयास करने ही चाहिए।

युग निर्माण मिशन-संक्षिप्त परिचय

उद्देश्य : मनुष्य में देवत्व का उदय एवं धरती पर स्वर्ग का अवतरण। व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण, समाज निर्माण। विचारक्रांति, नैतिक क्रांति, धार्मिक क्रांति एवं सामाजिक क्रांति द्वारा जनमानस का भावनात्मक परिष्कार।

गठन : नव निर्माण के लिए तत्पर नित्य समय दान और अंश दान करने वाले लाखों कर्मनिष्ठों का पारिवारिक संगठन। प्रचारात्मक, रचनात्मक और सुधारात्मक कार्यक्रमों द्वारा मानवीय गरिमा को उभारने वाली गतिविधियों में संलग्न समुदाय।

आधार : सदस्यों का दैनिक श्रमदान एवं अंशदान। नित्य ५० पैसा और २ घण्टे समय का नियमित अनुदान। इसी सामर्थ्य के बलबूते अनेकों महत्त्वपूर्ण गतिविधियों का गत ५० वर्षों से संचालन।

प्रमुख संस्थान : (१) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (२) अखण्ड ज्योति कार्यालय, मथुरा (३) गायत्री शक्तिपीठ, आंवलखेड़ा, आगरा (४) शांतिकुंज, हरिद्वार (५) ब्रह्मवर्चस्, हरिद्वार। भारत एवं विदेश में लगभग ४००० शक्तिपीठ, प्रज्ञापीठ एवं गायत्री परिवार की शाखाओं द्वारा प्रचार प्रसार।

प्रकाशन : युग निर्माण योजना (हिन्दी मासिक), युग शक्ति गायत्री (गुजराती मासिक), अखण्ड ज्योति मासिक एवं अन्य कई पत्रिकाएँ भारत की विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित। विभिन्न विषयों पर पूज्य गुरुदेव द्वारा रचित लगभग ५०० पुस्तकों का प्रकाशन देश की विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में।

गतिविधियाँ एवं प्रचार : धर्म तंत्र से लोकशिक्षण, अग्नि साक्षी में सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने के संकल्प, युग निर्माण विद्यालय, मथुरा, नौ दिवसीय साधना सत्र एवं एक मासीय **युग शिल्पी सत्रों** का नियमित आयोजन। टोलियों द्वारा देश-विदेश में मिशन का प्रचार-प्रसार।

कार्यक्षेत्र : समस्त भारतवर्ष एवं विश्व।